

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 24 — गोवर्धन पूजा

5 October 2026



जब व्रज के गोप इन्द्र के वार्षिक यज्ञ की तैयारी में जुटे हैं, तब बालक कृष्ण पिता के सामने विनम्र होकर एक प्रश्न रखते हैं, पूरे उत्सव को गौओं, ब्राह्मणों और गोवर्धन की ओर मोड़ देते हैं, और फिर विशाल रूप धारण कर “मैं ही पर्वत हूँ!” कहते हुए भेंट स्वयं ग्रहण करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का यह चौबीसवाँ अध्याय हमें गोवर्धन की तलहटी में ले जाता है, जहाँ पिता से पूछा गया एक बालक का प्रश्न समूचे व्रज के लिए यह सीख बन जाता है कि जीवन को सचमुच कौन धारण करता है और पूजा का अधिकारी कौन है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)
- अध्याय: 24 (चतुर्विंश अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: गोवर्धन पर्वत की पूजा
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए); कथा में श्रीकृष्ण और नन्द
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; कथा में नन्द और ब्रज के वृद्धजन
- मुख्य स्थल: ब्रज (वृन्दावन), गोवर्धन पर्वत की तलहटी
- केंद्रीय विषय: कृष्ण इन्द्र-यज्ञ पर प्रश्न उठाते हैं, कर्म और स्वभाव का उपदेश देते हैं, भेंट को गौओं, ब्राह्मणों और गोवर्धन की ओर मोड़ते हैं, और पर्वत के रूप में उसे स्वयं स्वीकार करते हैं
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 24, श्लोक 1-38
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, दशम स्कन्ध, चतुर्विंश अध्याय)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

तेईसवें अध्याय में कृष्ण के भेजे भूखे ग्वालबालों ने यज्ञ में लीन ब्राह्मणों से अन्न माँगा। ब्राह्मणों ने उपेक्षा की, किन्तु उनकी पत्नियाँ व्यंजन लेकर प्रभु के पास दौड़ी आई और अपना हृदय उन्हें अर्पित कर दिया। अपना अपराध समझकर ब्राह्मणों ने अपने अभिमान को धिक्कारा, पत्नियों की भक्ति पर विस्मित हुए और क्षमा माँगी — पर कंस के भय से वे दोनों भाइयों के दर्शन करने नहीं गए।

इन्द्र-यज्ञ की तैयारी पर कृष्ण की दृष्टि

शुकदेवजी ने कथा आगे बढ़ाई। ब्रज में बलदेव के साथ रहते हुए भगवान ने देखा कि गोप वर्षा के देवता इन्द्र के बड़े यज्ञ की सामग्री जुटाने में व्यस्त हैं। वे सब जानते थे — वे तो हर हृदय में बसे सर्वात्मा और सर्वदर्शी हैं — फिर भी बड़ों के सामने एक बालक की विनय से झुककर उन्होंने नन्द के नेतृत्व में बैठे वृद्धजनों से प्रश्न किया।

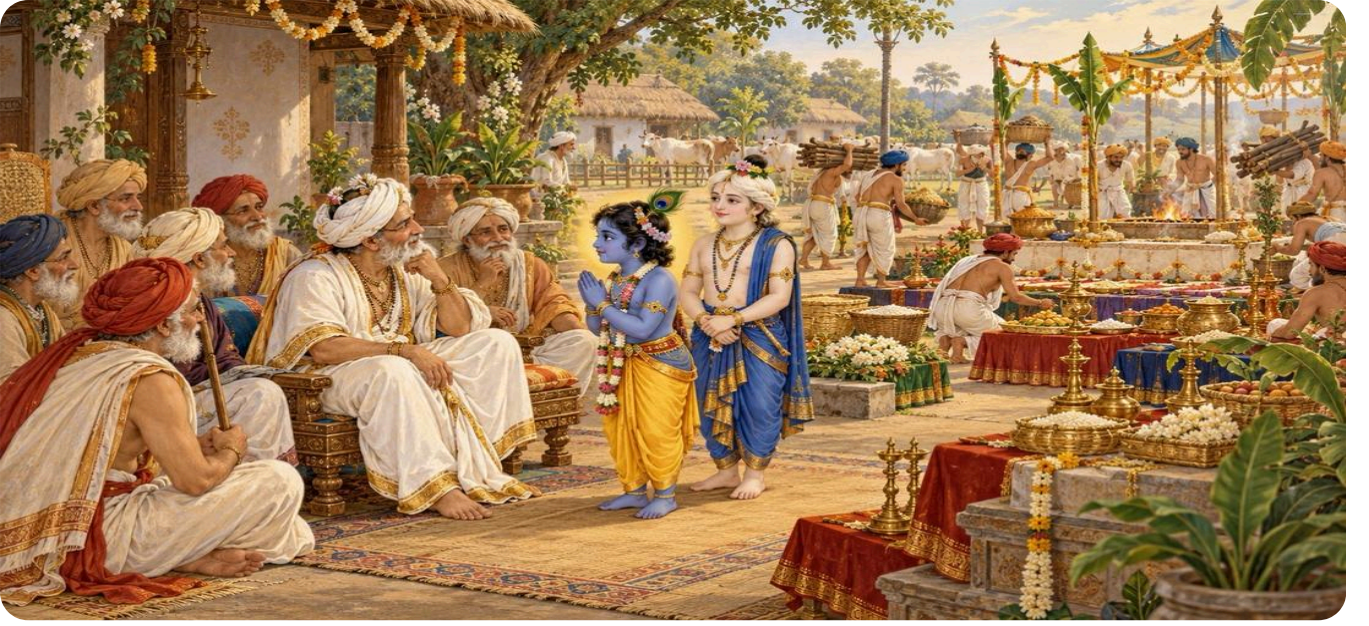
कथ्यतां मे पितः कोऽयं सम्भ्रमो व उपागतः ।

किं फलं कस्य वोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३ ॥

kathyatām me pitaḥ ko 'yaṁ sambhramo va upāgataḥ kiṁ phalaṁ kasya voddeśaḥ kena vā sādhyate makhaḥ

अर्थ: पिताजी, कृपया मुझे बताइए, यह कैसी बड़ी हलचल आप लोगों में मची है? इसका फल क्या है, यह किसके लिए है, और किसके द्वारा तथा किन साधनों से यह यज्ञ सम्पन्न होगा? (स्कन्ध 10, अध्याय 24, श्लोक 3)

“पिताजी, यह बताइए,” वे आगे बोले, “इसे सुनने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा है। जो साधु सबको अपना आत्मा मानते हैं, जिनके लिए न कोई अपना है न पराया, और जिनका न मित्र है, न उदासीन, न शत्रु — उनका कोई कार्य छिपा नहीं रहता; जहाँ ऐसी दृष्टि नहीं, वहाँ उदासीन को शत्रु की भाँति त्यागना चाहिए और मित्र को अपने समान मानना चाहिए।” फिर उन्होंने कहा: लोग कर्म समझकर करते हैं या बिना समझे, और सफलता समझदार को ही मिलती है। “तो यह अनुष्ठान आपने सोच-विचारकर अपनाया है, या यह केवल लोक-व्यवहार है? मुझे भली प्रकार समझाइए, मैं सचमुच जानना चाहता हूँ।”



सब कुछ जानते हुए भी कृष्ण नन्द और वृद्धजनों के आगे झुककर पूछते हैं कि इन्द्र-यज्ञ का फल क्या होगा, वह किसके लिए है, और उसे समझकर अपनाया गया है या केवल परम्परा से (श्लोक 2-7)।

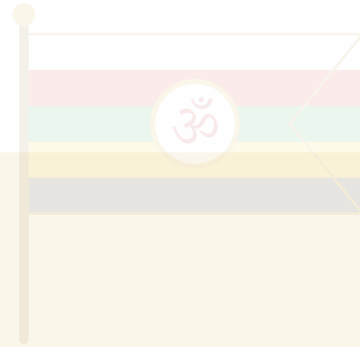
नन्दबाबा इन्द्र-पूजा का कारण बताते हैं

नन्द ने पीढ़ियों की श्रद्धा के साथ उत्तर दिया।

श्रीनन्द उवाच

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ।

तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥



śrī-nanda uvāca parjanya bhagavān indro meghās tasyātma-mūrtayaḥ te 'bhivarṣanti bhūtānāṃ prīṇanaṃ jīvanaṃ payaḥ

अर्थ: नन्द ने कहा: ऐश्वर्यशाली इन्द्र वर्षा के स्वामी हैं, और मेघ उनके अपने ही रूप हैं, जो उन्हें अपने प्राणों के समान प्रिय हैं; वे जल बरसाते हैं, जो प्राणियों का पोषण और उनका जीवन ही है। (स्कन्ध 10, अध्याय 24, श्लोक 8)

“बेटा, हम और दूसरे लोग,” नन्द बोले, “मेघों के इन स्वामी की पूजा उन्हीं के बरसाए जल से उपजे अन्न से किए यज्ञों द्वारा करते हैं, और यज्ञ-शेष से जीवन चलाते हैं, ताकि धर्म, भोग और सम्पत्ति — त्रिवर्ग का फल मिले। मनुष्यों के परिश्रम को फल देने वाले इन्द्र ही हैं।” और उन्होंने एक चेतावनी के साथ बात समाप्त की: जो काम, द्वेष, भय या लोभ से पीढ़ियों से चले आते धर्म को छोड़ देता है, उसका कल्याण नहीं होता।

कर्म और स्वभाव पर कृष्ण का उपदेश

तब शुकदेवजी ने भगवान का गुप्त अभिप्राय प्रकट किया: नन्द और व्रज के अन्य लोगों का उत्तर सुनकर केशव ने इन्द्र का क्रोध जगाने के उद्देश्य से अपने पिता को सम्बोधित किया।

श्रीभगवानुवाच

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ।

सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ १३ ॥

śrī-bhagavān uvāca karmaṇā jāyate jantuḥ karmaṇaiva pralīyate sukhaṁ duḥkhaṁ bhayaṁ kṣemaṁ karmaṇaivābhipadyate

अर्थ: श्रीभगवान ने कहा: कर्म से ही प्राणी जन्म लेता है और कर्म से ही उसका अन्त होता है; सुख और दुःख, भय और क्षेम — सब उसे कर्म से ही प्राप्त होते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 24, श्लोक 13)

कृष्ण ने तर्क दिया कि यदि कोई परम शासक दूसरों के कर्मों का फल देता है, तो उसे भी कर्ता का ही अनुसरण करना पड़ता है, क्योंकि अकर्ता पर उसका कोई वश नहीं। तब अपने-अपने कर्म-पथ पर चलने वाले प्राणियों को इन्द्र से क्या लेना, जो स्वभाव से निर्धारित गति को बदल नहीं सकता? प्रत्येक प्राणी अपने स्वभाव के अधीन है और उसी पर चलता है; देवता, असुर और मनुष्य सहित यह सारी सृष्टि स्वभाव में ही स्थित है।

देहानुच्चावचाज्जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ।

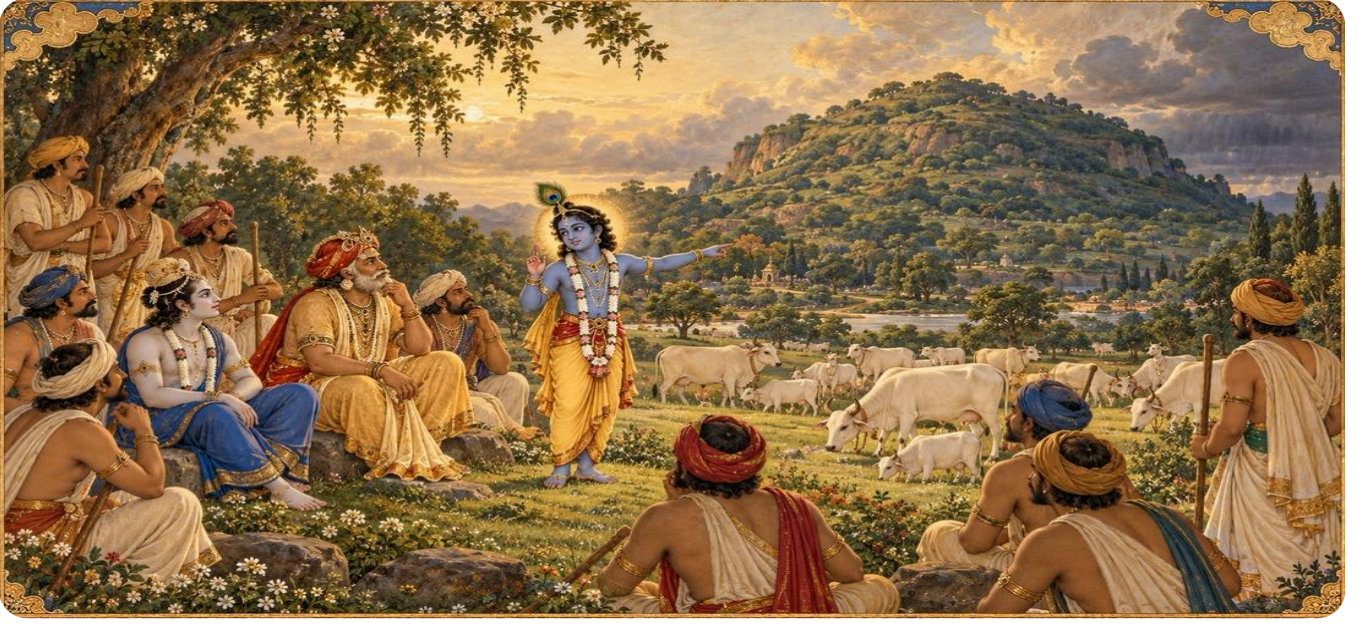
शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७ ॥

dehān uccāvacāñ jantuḥ prāpyotsṛjati karmaṇā śatrur mitram udāsīnaḥ karmaiva gurur īśvaraḥ

अर्थ: कर्म से ही प्राणी ऊँच-नीच शरीर पाता और छोड़ता है; कर्म ही शत्रु, मित्र और उदासीन के रूप में प्रकट होता है, और कर्म ही गुरु है, कर्म ही ईश्वर है। (स्कन्ध 10, अध्याय 24, श्लोक 17)

इसलिए, भगवान ने निष्कर्ष निकाला, मनुष्य अपने स्वभाव से निश्चित वर्ण और आश्रम में रहकर अपना कर्तव्य करे और कर्म का ही आदर करे; क्योंकि जिससे सुखपूर्वक जीवन चलता है, वही उसका देवता है। जो एक के सहारे जीता है पर पूजा दूसरे की करता है, उसे कोई कल्याण नहीं मिलता — जैसे कुलटा स्त्री को उपपति से कुछ नहीं मिलता।

फिर उन्होंने बताया कि प्रत्येक वर्ण किससे जीता है: ब्राह्मण वेदों से, क्षत्रिय पृथ्वी की रक्षा से, वैश्य वार्ता से और शूद्र द्विजों की सेवा से। वार्ता चार प्रकार की है — कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और कुसीद — “और इनमें से हम सदा गौओं के सहारे जीते आए हैं।” दृष्टि विस्तृत करते हुए उन्होंने समझाया कि सत्त्व, रज और तम संसार की स्थिति, उत्पत्ति और संहार के कारण हैं; रजोगुण से परस्पर संयोग द्वारा यह विविध जगत् उत्पन्न होता है, और रजोगुण ही मेघों को चारों ओर जल बरसाने को प्रेरित करता है। उसी जल से प्राणियों का काम बनता है। “फिर महेन्द्र भला क्या करेंगे?”



कृष्ण वृद्धजनों को सिखाते हैं कि हर प्राणी अपने कर्म और स्वभाव से जीता है, जिससे जीवन चलता है वही देवता है, और गोप सदा गौ, वन और पर्वत के सहारे जीते आए हैं (श्लोक 13-24)।

“गौओं, ब्राह्मणों और पर्वत की पूजा हो”

सिद्धान्त से कृष्ण व्यवहार की ओर मुड़े। “हमारे पास न नगर हैं, न जनपद, न गाँव, न घर,” उन्होंने स्मरण कराया। “पिताजी, हम वनवासी हैं, जो सदा से वनों और पर्वतों में ही बसते आए हैं।”

तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चरभ्यतां मखः ।

य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥

tasmād gavāṁ brāhmaṇānām adreś cārabhyatām makhaḥ ya indra-yāga-sambhārās tair ayam sādhyatām makhaḥ

अर्थ: अतः गौओं, ब्राह्मणों और पर्वत के सम्मान में यज्ञ आरम्भ किया जाए; और इन्द्र-यज्ञ के लिए जो सामग्री जुटाई गई है, उसी से यह यज्ञ सम्पन्न हो। (स्कन्ध 10, अध्याय 24, श्लोक 25)

फिर भगवान ने उत्सव का विधान बताया। अनेक पकवान बनें — खीर से लेकर दाल तक, साथ में संयाव, पूए और पकौड़ियाँ — और व्रज का सारा दूध एकत्र हो। वेदज्ञ ब्राह्मण विधिपूर्वक अग्नियों में आहुति दें और उन्हें उत्तम अन्न, गौएँ और दक्षिणा दी जाए। अन्य सबको — कुत्तों, चाण्डालों और पतितों तक को — यथायोग्य भोजन मिले; गौओं को घास दी जाए; और तब पर्वत को भेंट अर्पित हो। उसके बाद भोजन करके, चन्दन लगाकर और सुन्दर वस्त्र पहनकर “गौओं, ब्राह्मणों, अग्नियों और पर्वत की श्रद्धापूर्वक प्रदक्षिणा करो।” और एक पुत्र की तरह बात समाप्त की: “पिताजी, यह मेरा मत है; यदि रुचे तो कीजिए। ऐसा यज्ञ गौओं, ब्राह्मणों और पर्वत को प्रिय होगा — और मुझे भी।”

गोवर्धन को तलहटी में भेंट

शुकदेवजी ने फिर इन शब्दों के पीछे का रहस्य खोला: काल-स्वरूप भगवान ने इन्द्र का दर्प चूर करने के लिए यह कहा था। नन्द और वृद्धजनों ने उनकी सलाह प्रसन्नता से स्वीकार की और सब ठीक वैसे ही किया जैसा मधुसूदन ने कहा था। उन्होंने ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाया; इन्द्र के लिए जुटाई सामग्री से पर्वत और ब्राह्मणों को आदरपूर्वक भेंट अर्पित की; और गौओं को हरी घास दी।



भगवान के वचन के अनुसार नन्द और वृद्धजन स्वस्तिवाचन करवाते हैं, अग्नियों में आहुति देते हैं, इन्द्र के लिए जुटाया अन्न पर्वत और ब्राह्मणों को अर्पित करते हैं, और गौओं को हरी घास देते हैं (श्लोक 31-33)।

गीत गाते हुए पर्वत की परिक्रमा

फिर अपने गोधन को आगे करके ब्रजवासियों ने गोवर्धन की प्रदक्षिणा की। सुसज्जित गोप बैलगाड़ियों में सवार थे, साथ में गोपियाँ कृष्ण के पराक्रम के गीत गाती चलीं और ब्राह्मण आशीर्वाद देते रहे।



गोधन को आगे रखकर गोप बैलगाड़ियों में गोवर्धन की परिक्रमा करते हैं, गोपियाँ कृष्ण की लीलाओं के गीत गाती हैं और ब्राह्मण आशीर्वाद देते हैं (श्लोक 33-34)।

“मैं ही पर्वत हूँ!”

और तब वह आश्चर्य घटा जिसकी व्रज में किसी ने कल्पना न की थी।

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः ।

शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः ॥ ३५ ॥

*kṛṣṇas tv anyatamaṁ rūpaṁ gopa-viśrambhaṇaṁ gataḥ śailo 'smīti bruvaṇ bhūri balim ādad
bṛhad-vapuḥ*

अर्थ: किन्तु कृष्ण ने गोपों में विश्वास जगाने के लिए एक और रूप धारण किया और “मैं ही पर्वत हूँ!” कहते हुए विशाल शरीर से उस प्रचुर भेंट को खा लिया। (स्कन्ध 10, अध्याय 24, श्लोक 35)

तस्मै नमो व्रजजनैः सह चक्र आत्मनात्मने ।

अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥ ३६ ॥

*tasmai namo vraja-janaiḥ saha cakra ātmanātmāne aho paśyata śailo 'sau rūpī no 'nugrahaṁ
vyadhāt*

अर्थ: व्रजवासियों के साथ कृष्ण ने स्वयं उस रूप को प्रणाम किया — अपने ही आत्मस्वरूप को अपने द्वारा नमन — और कहा, “देखो तो! यह पर्वत साक्षात् रूप धारण कर हमारे सामने प्रकट हुआ है और हम पर अनुग्रह किया है।” (स्कन्ध 10, अध्याय 24, श्लोक 36)

गोपों के बीच खड़े भगवान ने अपने ही विराट रूप की ओर संकेत करके उन्हीं में से एक की तरह कहा: “इच्छानुसार रूप धरने वाला यह देवता उन वनवासियों का नाश कर देता है जो इसका अनादर करते हैं। अपने और अपनी गौओं के कल्याण के लिए हम इसे प्रणाम करें।” इस प्रकार वासुदेव-पुत्र के निर्देशानुसार गोवर्धन, गौओं और ब्राह्मणों की पूजा विधिपूर्वक सम्पन्न करके गोप कृष्ण के साथ ब्रज लौट आए।

यहीं यह अध्याय चुपचाप प्रकट करता है कि भगवान ने यह सब क्यों रचा। कर्म का उपदेश ब्रज को प्रकृति के कोरे नियम की पूजा में छोड़ने के लिए नहीं था: शुकदेवजी स्पष्ट कहते हैं कि कृष्ण ने इन्द्र का क्रोध जगाने और उसका दर्प चूर करने के लिए यह कहा, और भगवान ने अपने प्रस्ताव में भेंट का सच्चा गन्तव्य — “और मुझे भी प्रिय” — पिरो दिया, और फिर पर्वत के रूप में उसे ग्रहण किया (श्लोक 35)। इन्द्र की पूजा भय से और वर्षा के लिए होती थी; गोवर्धन, गौओं और ब्राह्मणों की पूजा उनके प्रति कृतज्ञता से हुई जो ब्रज के जीवन को सचमुच धारण करते थे — और इन सबके पीछे खड़े थे ब्रज के स्वामी, प्रेम से अर्पित वस्तु को स्वीकार करते हुए।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. जो करें, समझकर करें। कृष्ण की पहली शिक्षा एक प्रश्न है: यह अनुष्ठान समझा गया है या केवल विरासत में मिला है? सफलता ज्ञानपूर्वक कर्म करने वाले की है। भक्ति भी तब गहरी होती है जब हम जानते हैं कि जो करते हैं, क्यों करते हैं।
2. कर्म और स्वभाव हर जीवन को गढ़ते हैं। जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, भय और सुरक्षा अपने ही कर्म से आते हैं (श्लोक 13); हर प्राणी अपने स्वभाव पर चलता है, और देवता भी उसी में स्थित हैं। आकाश से याचना वह नहीं बदल सकती जो हमारे कर्मों ने बोया है।
3. जो आपको धारण करता है, उसका सम्मान करें। जिससे जीवन चलता है, वही देवता है, और जो एक के सहारे जीकर दूसरे को रिझाता है, उसे कुछ नहीं मिलता। गोप गौओं, वनों और पर्वतों से जीते थे; कृतज्ञता पहले वहीं बनती थी।
4. भेंट अपने सच्चे स्वामी तक पहुँचती है। भगवान ने इस यज्ञ का प्रस्ताव रखा (श्लोक 25), उसे स्वयं को प्रिय बताया, और पर्वत के रूप में उसे स्वीकार किया (श्लोक 35)। उनकी सृष्टि और उनके भक्तों को श्रद्धा से जो भी दिया जाता है, वह उन्हीं को प्राप्त होता है।
5. भगवान आचरण से सिखाते हैं। कृष्ण ने गोपों के साथ अपने ही रूप को प्रणाम किया (श्लोक 36)। परम पुरुष स्वयं श्रद्धा का आदर्श रचते हैं, ताकि श्रद्धा हममें जड़ पकड़ सके।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में हृदय को जो छूता है, वह तर्क नहीं, वह मुद्रा है। जगत् के स्वामी अपने पिता के सामने विनय से झुककर खड़े हैं और सिखाए जाने की प्रार्थना करते हैं। जिनकी पूजा ब्रह्मा और शिव करते हैं, वे गौओं और एक पहाड़ के लिए गाँव के उत्सव का प्रस्ताव रखते हैं, और फिर अपने सखाओं के बीच एक पर्वत के आगे हाथ जोड़ लेते हैं। हर मोड़ पर कृष्ण स्वयं झुकते हैं ताकि ब्रज ऊपर उठे — आकाश से भयभीत सौदेबाज़ी से हटकर उस घास, उन आशीर्वादों और उस मौन पर्वत के प्रति कृतज्ञता की ओर, जिन्होंने उन्हें सदा धारण किया। और जब भेंट पूरी हो जाती है, तो वे उसे स्वयं खा लेते हैं, ताकि गोपों का सरल प्रेम बिना उनके जाने ही सच्चे गन्तव्य तक पहुँच जाए। शायद हम सबके साथ वे ऐसा ही करते हैं: उनकी गौओं, सेवकों और धरती के प्रति हमारी दया को वे स्वयं ग्रहण करते हैं, जबकि हम समझते हैं कि हम केवल कर्तव्य निभा रहे हैं।

एक दैनिक भाक्ते-अभ्यास

आज भोजन से पहले उन तीन चीज़ों का नाम लें जो सचमुच आपके जीवन को धारण करती हैं — वह धरती जिसने अन्न उगाया, वे हाथ जिन्होंने उसे बनाया, वह साँस जो आपने अर्जित नहीं की — और हर एक के लिए कृतज्ञता अर्पित करें, यह स्मरण करते हुए कि भगवान ऐसी कृतज्ञता को वैसे ही ग्रहण करते हैं जैसे पर्वत ने व्रज की भेंट। फिर अपनी देखरेख के किसी एक प्राणी पर सोच-समझकर दया करें। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

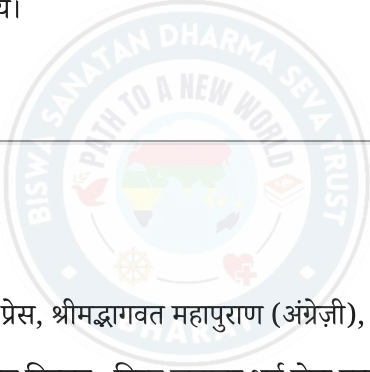
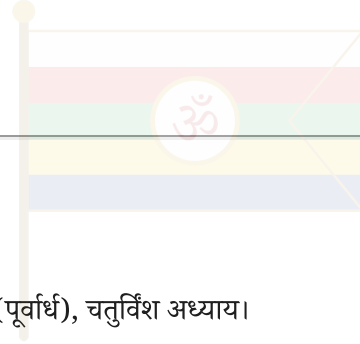
उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह चौबीसवाँ अध्याय इन्द्र के उत्सव को गोवर्धन की प्रथम पूजा में बदल देता है। एक पुत्र की आदरपूर्ण जिज्ञासा और एक गुरु के स्पष्ट तर्क से कृष्ण व्रज को उन गौओं, ब्राह्मणों और उस पर्वत के सम्मान की ओर ले जाते हैं जो सचमुच उन्हें धारण करते हैं, और फिर विश्वास जगाने वाले विशाल रूप में भेंट स्वयं ग्रहण करते हैं। एक ही बात पूरे अध्याय को समेट लेती है: भय और फल पर टिकी पूजा कृतज्ञता की पूजा को स्थान देती है, और ऐसी सारी कृतज्ञता उन भगवान तक बहती है जो अदृश्य रहकर हमें जीवित रखने वाली हर वस्तु के पीछे खड़े हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), चतुर्विंश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-24-worshipping-govardhana-hill-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

